International Indexed & Referred Research Journal, October,2012. ISSN 0974-2832, RNI- RAJBIL 2009/29954; VoL. IV * ISSUE- 45

शोध पत्र- हिन्दी

धर्म निरपेक्षता का प्रतीक - धर्मपत्र

* डॉ. यशवन्ती देवी

* प्रवक्ता हिन्दी, चौ. देवीलाल मैमोरियल कन्या महाविद्यालय, सिवाड (पानीपत) हरियाणा

October,2012

धर्मनिरपेक्षता दो शब्दों से मिलकर बना है – धर्म और निरपेक्षता। धर्म का अर्थ है – धारण करना । यह शब्द संस्कृत की धृ(धारणे) धातु से निष्पन्न हुआ है ।[1] निरपेक्षता का अर्थ है तटस्थता या निष्पक्षता।[2] अतः धर्मनिरपेक्षता शब्द का तात्पर्य है –"वह राजनीतिक विचारधारा जो धर्म के आधार पर नागरिकों में भेदभाव नहीं मानती। वह नागरिकों के धार्मिक विश्वास को उनका व्यक्तिगत मामला समझती है ।"[3] राजनीतिक स्तर पर इन शक्तियों को दृढ़ करने का प्रयत्न अकबर के बाद हुआ ही नहीं । इसलिए विभाजन की त्रासदी हुई। भविष्य में भारत में दोनो कौमें अधिक निकट आये, ऐसा वातावरण एक साहित्यकार ही पैदा कर सकता है। इस दिशा में आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी के 'धर्मपुत्र' उपन्यास ने बेखूबी प्रयास किया है । क्योंकि इसमें दर्द की तस्वीर खींची गई है। धर्म के परे मनुष्य के जो सह मानवीय संबंध होते है उनका बड़ा ही सहज चित्रण इसमें किया है । इनका मानना है, "जिनकी नसों में शत–प्रतिशत मुस्लिम रक्त बह रहा है, वे ऐसे कट्टर धर्म के समर्थक है ।"[4] क्योंकि जाति, धर्म आदि रक्त प्रदत्त नहीं होते, परिवेशगत होते हैं।

'धर्मपुत्र' आचार्य जी का अत्यंत लोकप्रिय उपन्यास है, इसमें साम्प्रदायिकता पर गहरी चोट की गई है जो मशाल की तरह रोशन होकर आज के समाज को रास्ता दिखाने की अपार क्षमता रखता है। राष्ट्रीय आन्दोलनों और देश–विभाजन की त्रासदी को भी इसमें दर्शाया गया है। इसमें देश–विभाजन के समय होने वाले साम्प्रदायिक दंगों, क्रूरता, शोषण व जघन्यता को उजागर किया गया है। साम्प्रदायिक एकता का शंख फूंकने वाला यह उपन्यास सही अर्थो में साम्प्रदायिकता पर गहरी चोट करता है। प्रस्तुत उपन्यास में देश को स्वाधीन कराने हेतु विभिन्न आन्दोलनों, द्वितीय विश्व युद्ध के समय इग्लैंड की स्थिति, भारत के प्रति उनकी दिखावटी सहानुभूति पूर्ण दृष्टि व अंत में ब्रिटिश साम्राज्य का ढ़ांचा हिलना, भारत का दो भागों में बंटना तदुपरांत मारकाट, लूट, आग, बलात्कार, हत्या का बाजार गर्म होना और देखते ही देखते यह हत्याकांड ऐसा रुप धारण कर गया जो मानव जाति के इतिहास में अपना स्थान नही रखता था । इस समय की पिशाच लीलाओं का वर्णन लेखनी नही कर सकती। लाहौर और कलकत्ता के बाजारों मे भयंकर अग्नि की ज्वाला की गगनचुंबी लपटें उठी। निरीह औरतें, बच्चे, बूढ़े और जवान आर्तनाद, घरों कूचो, बाजारों से अस्पतालों में दम तोड़ने वालो की हिचकियां सुनाई पडीं।[5] अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसे घोर साम्प्रदायिकता युग में जब कि एक धर्म के लोग दूसरे धर्म के लोगों की जान लेने के लिए तैयार है उन विपरित परिस्थितियों में एक हिन्दू परिवार मुस्लिम बच्चे के जन्म लेने से पहले स्वीकार कर लेता है तथा बच्चे के व्यस्क होने तक समाज में कही भी इसका भेद नही खोलता । हुआ यूंकि उपन्यास की नायिका हुस्न बानू शादी से पूर्व एक प्रोफेसर से प्रेम करती है तथा गर्भवती हो जाती है, उनसे शादी भी करना चाहती है परन्तु उनके बड़े उनकी शादी नवाब से करना चाहते है।

इसलिए वे अपने पुराने एक हिन्दू दोस्त के लड़के को हुस्न बानू से जन्म लेने वाले बच्चे को लेने के लिए मना लेते है । हुस्न बानू और डाक्टर अमृतराय के बीच इस संदर्भ में बातचीत होती है–मरे बच्चे से, चाहे वह लड़का हो या लड़की–कभी भी उसकी मां का नाम न बताइए –न बाप का।[6]

डॉ0 अमृतराय ने इस बालक का जन्मोत्सव हिन्दू संस्कारों के अनुसार किया और इनका नाम रखा दिलीप कुमार राय। यद्यपि यह बालक अमृतराय और अरुणा का अपना बेटा नही था किन्तु लोगो की नजर में वह उन्ही का पुत्र था। बच्चे के जन्म पर अमृतराय एक जश्न आयोजित करते है तथा नवाब उस समय वहां उपस्थित लोगों के मध्य साम्प्रदायिक सौहार्द्ध का उदाहरण प्रस्तुत करते है –दुनिया के सामने दोस्ती की मिशाल पेश करने का इरादा नही रखता, न हिन्दू–मुस्लिम जज्बे और फर्ज को देख रहा हूं और आज में अपनी तमाम जायदाद के दो हिस्से करता हूं । आधी जायदाद में मैं अपनी पोती हुस्न बानू को देता हूं और आधी अपने दोस्त के लड़के इस नन्हे से फरिश्ते को।[7] इसका अभिप्राय ये नही कि नवाब ने जो इतनी बड़ी सम्पति पुरस्कार स्वरुप दिलीप राय के नाम की यह सोचकर नही कि अतुल सम्पंदा को पाकर समाज के सम्मुख मुंह नही खोलने या बच्चे के प्रति साम्प्रदायिक विद्वेष न हो बल्कि पुरानी दोस्ती के फर्ज को पूरा करने की बात कहते है। उधर डॉ0 अमृतराय ओर अरुणा भी इस बालक को अपने अन्य तीन बच्चों के समान पालन–पोषण करते है। दूसरे बच्चो के लिए खर्च करते है ।

परस्पर इस संबंध में वार्तालाप से यह संदेह दूर हो जाता है । उसकी कुछ जायदाद बची होगी, इधर मैं भी दे सकती हूं।.....जायदाद रुपया तो सब हमने छुआ नही है, बढ़ा ही है। हमने तो अपने लड़के की तरह ही इसे पाला है। न इस और न मेरे बच्चों को यह वहम–ओ–गुमान है कि वे सब आपस में सगे भाई–बहन नही है। सबके विचार अलग है, पर आपस में प्रेम बहुत है।[8] जब तक पाकिस्तान न बना था हिन्दू–मंस्लिम झगड़े भी न के बराबर होते थे। हिन्दू पक्के हिन्दू थे और मुसलमान

पक्के मुसलमान। परन्तु इससे उनके आपसी भाईचारे में कोई अन्तर नही पड़ता था। परस्पर एक–दूसरे के घर आना–जाना, खाना–पीना होता था। मुसलमान के घर जब हिन्दू दोस्त जाता तो खास ध्यान रखा जाता कि कहीं मुसलमान नौकर ने खान–पान को छुआ तो नही है व्याह–शादी में हिन्दू हलवाई, हिन्दू नौकर खाना–बनाते खिलाते और मुसलमान मालिक दूर खड़ा देखता रहता, सब ठीक तो है। इसे वह अपनी तौहीन नही अपना–अपना अकीदा अपना–अपना रिवाज समझता था । सबके खाने–पीने, विनोद–विहार करने के अलग इंतजाम ।

परन्तु अरुणा ने जब से हुस्न के बच्चे को अपनाया है वह इस धर्म–सम्प्रदाय की भावना को भूल गई है जब बानू उसके यहां दावत पर आती है तो अरुणा उसे खाने को कहती है तो बानू उसे भी अपने साथ खाना खाने के लिए जिद्द करती है तो अरुणा कहती है – तो मैं भी तुम्हारे साथ ही खाऊंगी एक ही थाली में। .... तुम्हारी जिगर को टुकड़ा अब मेरी गोद में है, अब भी भेद–भाव रह सकता है ? अब क्या हम तुम दो है ? लेकिन भाभी .....।

दुलखो मत, यह एक पवित्र काम है पुण्य है। जब तक मैं तुम्हारे साथ नही खाऊंगी, तुम्हारे बेटे को अपनाऊंगी कैसे।[9] इस तरह एक ही थाल में तथा एक दूसरे के हाथो से खाना खाने से भी इस साम्प्रदायिक सौहार्द्ध का पता चलता है। अर्न्तजातीय विवाहो के अनेक उदाहरण हमने पढ़े है, सुने है, देखे है परन्तु एक धर्म से दूसरे धर्म के विवाह का जिक्र कम सुना है। दिलीप राय के व्यस्क होने पर उसके विवाह के लिए साम्प्रदायिकता की भावना आड़े हाथो आती है । यह चिन्ता उन्हे दिन–रात चैन से नही सोने देती कि उसका विवाह कैसे करें ? मुस्लिम लड़की से करते है तो समाज के सामने सारा भेद खोलना पड़ेगा अगर हिन्दू लड़की से करें तो उनके दूसरे बच्चो के ब्याह शादियों के समय झमेला खड़ा हो जाएगा । अन्तरात्मा उन्हें झकझोर कर रख देती है कि एक हिन्दू लड़की को कैसे धर्म संकट में डाल सकते है इस बात को वो दिलीप के सामने भी नही रखना चाहते क्योंकि सच्चाई पता लगने पर वह क्या कर बैठे ....। अन्त में वे एक रास्ता खोझ लेते है कि राधाकृष्ण जो कि पेशे से वकील है उन्ही की बिरादरी के है। विलायत से लौटे है जो जात–पात बिरादरी को नही मानते, उनकी बेटी माया के साथ रिश्ते की बात तय कर लेते है । लेकिन उनके माता–पिता के समाने जरा सा भी भेद नही खोलते । पर दिलीप राय हिन्दू धर्म का कट्टर समर्थक है और वह चाहता है कि कोई सीता सावित्री के समान पतिव्रता नारी ही इस घर में आये क्योंकि वह अग्रेंजी फैशन की गुलाम विलायती बीबी को पंसद नही करता। वह कहता है – पाश्चात्य जीवन में डूबी हुई किसी लड़की से मेरी पटरी नही बैठ सकती। मेरा भी जीवन दुखी होगा, उनका भी जीवन नष्ट होगा।[10]

चूंकि राधाकृष्ण मुद्दत से बिरादरी से बाहर है तो यहां सामाजिक मर्यादा, जात–बिरादरी का भी प्रश्न नही उठता है और अन्ततः फैसला नही में जाकर सिमट जाता है । जब भारत–बंटवारा हो जाता है तो उस समय कुछ कट्टर मुसलमान दिल्ली की तबाही के लिए षंडयंत्र रचते है । जिसका पता लगने पर दिलीप उन को असफल कर देता है तथा बदला लेने के लिए रंग महल पर अपने संगी साथियों के साथ घेरा डाल देता है तो हुस्न बानो की जान को खतरे में देखकर अरुणा अपने पति को बानू की जान बचाने के लिए कहती है। उधर अमृतराय शहर में बढ़ते हुए हिन्दू–मुस्लिम दंगों को देखकर अपनी पत्नी को समझाने की कोशिश करते है कि पागल तो नही हो गई हो ? देखती नही हो शहर का क्या हाल है ?

परंतु बेटे के पाप में मां–बाप का हिस्सा है यहां रंगमहल में एक बानू रहती है वे अकेली महिला है, उनकी प्राण–रक्षा करने या उन्ही के साथ जल मरने के लिए हम लोग आए है ।[11] मन ही मन में वह राधाकृष्ण की पुत्री माया से प्यार करता है जो कि हिन्दू परिवार से है परन्तु इसकी जानकारी किसी को नही हो पाती और बाद में करुणा के पत्र–व्यवहार से जब माया और राधाकृष्ण कानपुर से दिल्ली आते है, हुस्न बानो के साथ दिलीप के सामने जब यह भेद खुल जाता है कि उसकी असली जननी बानो है तो वह अपने घर आई हुई माया को छोड़कर तथा अरुण–अमृतराय के परिवार को छोड़कर दूर कही जाना चाहता है ताकि इस परिवार को समाज के अन्तर्विरोधो का सामना न करना पड़े परन्तु यहां सारे रहस्य को जान लेने के बाद माया जब दिलीप से बात करती है तो दिलीप कहता है अब भला मैं तुमसे कैसे आशा कर सकता था । फिर मैं इतना स्वार्थी भी नही कि तुमसे किसी कुर्बानी की दरख्वास्त करू, लेकिन माया कहती है कि सबसे मुंह मोड़ सकते हो, लेकिन मुझसे नही मोड़ सकते। लेकिन वास्विकता तो यहीं है कि मैने पत्थर के देवता को रोम–2 में बसाकर उनकी पूजा की । सुनते तो है कि पत्थर के देवता भी सच्ची उपासना से प्रसन्न हो जाते है, अभीष्ट वर देते है, पर तुम पत्थर से भी निष्ठुर निकले ओर क्यों न निकलते, हिन्दू तो तुम हो नही, फिर हिन्दू देवता का बड़प्पन तुममे कैसे आ सकता था ....।[12]

और देखते–2 मन के सारे विषाद, मैल अन्य धारा से साफ हो जाते है और खुशी–2 विवाह बंधन में बंध जाते है ।

सामुदायिक एकता के ऐसे उदाहरण बहुत कम देखने को मिलते है । प्रस्तुत उपन्यास में सामाजिक अर्न्तविरोधो, विड़म्बनाओं को मार्मिक एवं प्रभावशाली ढ़ग से प्रस्तुत किया गया है। अतीत की घटनाओं को चित्रित कर लेखक ने समाज में व्याप्त साम्प्रदायिकता के घात–प्रतिघातों के प्रति सचेत किया है ।

संदर्भ ग्रंथ

1 वी.के.वर्मा, धर्मदर्शन, पृ0 2 2 डॉ0 जे.पी.जौहरी राष्ट्र और धर्म निरपेक्षता, विश्वज्योति अंक, पृ0 40 3 लीलाधर पर्वतीय शर्मा, भारतीय संस्कृति कोश, पर्वतीय, पृ0 454 4 आचार्य चतुरसेन शास्त्री, धर्मपुत्र, पृ0 67 5 आचार्य चतुरसेन शास्त्री, धर्मपुत्र, पृ0 119–120 6 आचार्य चतुरसेन शास्त्री, धर्मपुत्र, पृ0 12 7आचार्य चतुरसेन शास्त्री, धर्मपुत्र, पृ0 13 8 आचार्य चतुरसेन शास्त्री, धर्मपुत्र, पृ0 109 9 आचार्य चतुरसेन शास्त्री, धर्मपुत्र, पृ0 23 10 आचार्य चतुरसेन शास्त्री, धर्मपुत्र, पृ0 65 11 आचार्य चतुरसेन शास्त्री, धर्मपुत्र, पृ0 126 12 आचार्य चतुरसेन शास्त्री, धर्मपुत्र, पृ0 141–142